Bodhi-Path Year 2021 July Issue Volume 21 Page No 32-39

डा. सुष्मिता
दिल्ली विश्वविघालय

लंकावतार सूत्र में विज्ञानवाद

बौद्ध–धर्म की महायानी शाखा में जिस विपुल साहित्य की रचना हुई उसे सूत्र, शास्त्र एवं धारणी तथा स्तोत्र जैसे स्थूल प्रभेदों में रखा जाता है। इन प्रभेदों में सूत्रों को महायानी परम्परा में स्वयं बुद्ध द्वारा उपदिष्ट माना गया है किसी आचार्य द्वारा प्रणीत नहीं। इन सूत्रों की शैली एवं कथ्य स्थविरवादी बौद्ध परम्परा के पालि–सुतों के समान है तथा इनमें बुद्ध तथा उनके द्वारा साक्षात्कृत धर्म को बहुत कुछ शिथिल एवं अव्यवस्थित शैली में प्रस्तुत करने की सामान्य प्रवृति स्पष्ट रूप में दृष्टिगत होती है। दूसरी ओर महायान परम्परा के शास्त्र बौद्ध आचार्यों की स्वतन्त्र रचनाएं हैं जिनमें बुद्धोपदिष्ट तथा सूत्रों में संगृहीत धर्म पर व्यवस्थित एवं तर्क संगत गम्भीर अनुचिन्तन प्राप्त होता है। प्रायः बुद्धोपदिष्ट महायानी सूत्र उसी रूप में है जिस प्रकार शंकर भाष्य आदि के मूल उत्स ब्रह्म सूत्र जैसे सूत्रों में पहचाने जा सकते हैं।

महायान–परम्परा में नौ सूत्र अत्यधिक समादृत हैं तथा इन्हें नौ धर्म भी कहा जाता है। इनका एक अन्य अभिधान वैपुल्य–सूत्र भी है। इन नौ सूत्रों में प्रज्ञा–पारमिता–सूत्र तथा आर्य–लंकावतार–सूत्र बौद्ध–दर्शन के विकासेतिहास की दृष्टि से विशिष्ट महत्व रखते हैं क्योंकि इन्हीं के आधार पर बौद्ध–दर्शन की माध्यमिक एवं विज्ञानवाद नामक शाखाएं विकसित हुईं। ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से यह प्रतीत होता है कि सूत्र रूप में शून्यवाद एवं विज्ञानवाद इन दोनों दार्शनिक प्रस्थानों का उदय यद्यपि लगभग साथ–साथ ही हुआ परन्तु व्यवस्थित दार्शनिक प्रस्थान के रूप में शून्यवाद पहले प्रतिष्ठित हुआ तथा विज्ञानवाद का उदय शून्यवाद या माध्यमिक के प्रतिवाद स्वरूप में हुआ।

प्रायः समूचे विज्ञानवाद को बौद्ध–चिन्तन की एक ही दार्शानिक शाखा के रूप में पहचाना जाता है। परन्तु लंकावतार सूत्र से लेकर शान्तरक्षित जैसे उतरकालीन आचार्यों की रचनाओं के सूक्ष्म परीक्षण के आधार पर आधुनिक काल के अनेक विद्वानों ने विज्ञानवाद के

उत्तरकालीन स्वरूप को उसके पूर्वकालीन स्वरूप से अत्यन्त भिन्न पाया है। महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की भिन्नता के ही आधार पर इन विद्वानों ने सम्पूर्ण विज्ञानवादी चिन्तन को दो चरणों में विन्यस्त किया हैः–

1. मूल विज्ञानवाद
2. स्वतन्त्र–विज्ञानवाद या सौत्रान्तिक विज्ञानवाद

इन में मूल विज्ञानवाद के मूल स्रोत आचार्य अश्वघोष कृत महायान श्रद्धोत्पाद शास्त्र (संस्कृत में अप्राप्त) तथा लंकावतारसूत्र में विद्यमान हैं। आर्य मैत्रेयनाथ, आर्य असंग, आचार्य वसुबन्धु तथा उनके भाष्यकार आचार्य स्थिरमति ने लंकावतारसूत्र की अव्यवस्थित किन्तु विस्तृत विषयवस्तु को लेकर मूल विज्ञानवाद को सुव्यवस्थित दार्शनिक प्रस्थान का स्वरूप प्रदान किया। दूसरी ओर सौत्रान्तिक नामक बौद्ध–दर्शन की अन्यतम शाखा से भी विज्ञानवाद का परवर्ती स्वरूप किसी न किसी रूप में अवश्य ही प्रभावित हुआ तथा उसी से स्वतन्त्र विज्ञानवाद का उदय हुआ। स्वतन्त्र विज्ञानवाद के प्रतिष्ठापक नालन्दा के प्राचीन महाविहार के यशस्वी आचार्य दिड़्नाग हैं तथा इसी महाविहार के आचार्य धर्मकीर्ति, धर्मपाल, शीलभद्र, शान्तरक्षित एवं कमलशील जैसे नैयायिक विज्ञानवाद की इस शाखा के अन्य प्रमुख आचार्य हैं।

लंकावतार सूत्र में विज्ञानवाद के स्वरूप पर विचार करने से पूर्व यह देखना भी आवश्यक है कि योगाचार अथवा मूल विज्ञानवादी चिन्तन के मुख्य प्रतिपाद्य क्या हैं तथा लंकावतारसूत्र में इनका प्रतिपादन हुआ भी है अथवा नहीं?

इसी सन्दर्भ में "महायानसम्परिग्रह"[1] शास्त्र में आचार्य असंग द्वारा निर्दिष्ट योगाचार की निम्नलिखित विशेषताएं यहां पर उद्धरणीय हैंः–

1. प्रत्येक धर्म में विशुद्ध विज्ञान के रूप में धर्मधातु अन्तर्यामी होकर विद्यमान है।
2. स्वभाव तीन हैंः– परिकल्पित, परतन्त्र और परिनिष्पन्न।
3. ग्राहक (जीव, प्रमाता) एवं ग्राह्य (वस्तुजगत) दोनों आलय–विज्ञान के आभासमात्र हैं।
4. बोधिज्ञान के लिए छ पारमिताएं आवश्यक हैं।
5. बुद्धत्त्व प्राप्ति हेतु बोधिसत्त्व को दस भूमियां पार करनी होती हैं।

6. अविद्याजन्य ग्राह्य–ग्राहक–वासना के निरोध से अद्वय प्रज्ञा या बोधि की प्राप्ति होती है।
7. वस्तुतः संसार एवं निर्वाण में, संक्लेष और व्यवदान में कोई भेद नहीं है क्योंकि अद्वय धर्मधातु प्रकृति–विशुद्ध है और द्वैत अविद्या–जन्य है। नानात्व संसार है; तथता या "समत्व" निर्वाण है।

अब यह देखना आवश्यक है कि असंग द्वारा प्रतिपादित विज्ञानवाद की ये आठ या दस विशेषताएं लंकावतार सूत्र में मिलती भी हैं या नहीं? और यदि मिलती हैं तो किस रूप में?

इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम इस सुविदित तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि लंकावतार में मूल–विज्ञानवाद की प्रायः वे सभी विशेषताएं या अवधारणाएं मिल जाती हैं जिन्हें आगे चल कर आचार्य मैत्रेयनाथ, आचार्य असंग एवं आचार्य वसुबन्धु आदि ने व्यवस्थित विज्ञानवादी दर्शन का स्वरूप प्रदान किया। यह भी स्मरणी है कि लंकावतार महायानी बौद्ध–परम्परा में स्वयं भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट नौ वैपुल्य सूत्रों में से एक है। यह किसी विशिष्ट दार्शनिक प्रस्थान के साथ सम्बद्ध किसी आचार्य द्वारा प्रणीत शास्त्र नहीं है। अतः महायान के किसी विशिष्ट दार्शनिक प्रस्थान के विशिष्ट सिद्धान्तों को व्यवस्थित एवं तार्किक आधारों पर प्रस्तुत करने वाले शास्त्र के समान इस महायान–सूत्र में विज्ञानवाद के व्यवस्थित विवेचन की आशा नहीं की जा सकती है। इसकी विषयवस्तु की सूक्ष्म परीक्षा के आधार पर यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि मांसभक्षण जैसे धार्मिक विषयों के विवेचन के कुछ स्थलों के होते हुए भी लंकावतारसूत्र में आचार्यों द्वारा उतरकाल में किए गए विज्ञानवाद के व्यवस्थित विवेचन के मूल उत्स बीज रूप में विद्यमान हैं।

यह भी ध्यातव्य है कि एक सूत्र होने के कारण ही लंकावतार सूत्र को आदि से अन्त तक पढ़ने के उपरान्त भी यह सुस्पष्ट नहीं हो पाता कि इस ग्रन्थ में किस विशिष्ट सिद्धान्त का दृढ़ता के साथ प्रतिपादन किया गया है तथा इसका मुख्य प्रतिपाद्य क्या है? अनेक स्थलों में दो परस्पर–विरोधी विचारधाराएं भी दृष्टिगत होती हैं। इससे यह निश्चित करना कठिन हो जाता हे कि इस सूत्र का कौन सा अंश मौलिक है एवं कौन सा प्रक्षिप्त। उदाहरण के लिए इस सूत्र में एक स्थान पर तथागत गर्भ का विवेचन आत्मवादियों के आत्मा के समान प्रतीत होता है तो अन्यत्र इसे आत्मवादी तीर्थकों को आकर्षित करने का उपायमात्र कह कर

आत्मवाद का निराकरण कर दिया गया है। पुनः सगाथकं नामक दशम परिवर्त में आश्चर्यजनक रूप से आत्मवाद का प्रतिपादन करते हुए यह कहा गया है, कि यदि स्कन्धों में आत्मा न रहे तो भूमियों, वशिताओं, अभिज्ञाओं, अभिषेक और विशिष्ट समाधियों की प्राप्ति नहीं हो सकतीः–

"भूमयो वषिता भिज्ञा अभिषेक"च उतरं।

समाधयो विषेषाष्च असत्यात्मनि नास्ति वै।।"[2]

इसी प्रकार इस सूत्र में कहीं–कहीं सिद्धान्त पक्ष के रूप में माध्यमिक दर्शन के शून्यवाद का उल्लेख है।[3] दूसरी ओर अनेक स्थलों में परमार्थसत् के रूप में चितमात्र या विशुद्ध विज्ञान की स्थापना की गई है।[4]

अतः लंकावतार सूत्र की इस समय उपलब्ध अन्तर्वस्तु में विविध प्रकृति वाले सिद्धान्तों को देख कर सहज ही यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि इस सूत्र का प्रमुख प्रतिपाद्य विज्ञानवाद है या कुछ और?

इस सन्दर्भ में यह स्मरणीय है कि महायानी परम्परा में तथा आधुनिक विद्वानों की दृष्टि में भी लंकावतार सूत्र विज्ञानवाद का मूलभूत स्रोत एक वैपुल्यसूत्र है। इसमें अव्यवस्थित रूप में विज्ञानवाद के सभी प्रमुख सिद्धान्त देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए सौत्रान्तिकों ने बाह्य पदार्थों की सता की सिद्धि अनुमान द्वारा या ज्ञान द्वारा की। विज्ञानवादियों ने इस मत से एक डग आगे बढ़ कर यह कहा कि यदि बाह्यार्थ की सता उसके ज्ञान पर अवलम्बित है तो फिर वास्तविक सता ज्ञान, विज्ञान, चितमात्र या विज्ञप्ति ही है। बाह्य पदार्थ वस्तुतः मृगमरीचिका के समान निःस्वभाव हैं। विशुद्ध प्रत्ययवादी (idealist) हैं। उसकी दृष्टि में बाह्य पदार्थ सर्वथा असिद्ध हैं तथा बाह्य पदार्थों के अभाव में भी विज्ञान एकमात्र सत्य तत्त्व है विज्ञानवादी लंकावतार सूत्र में अनेक स्थलों में विज्ञानवाद के मूलभूत सिद्धान्त 'चितमात्रता' का कथन स्पष्ट शब्दों में करते हुए चित की ही एकमात्र सता का प्रतिपादन सुदृढ़ अभिनिवेष के साथ किया गया है।

लंकावतार के अनुसार विज्ञान या चित ही एकमात्र तत्त्व है। कामलोक, रूपलोक और अरूपलोक, इन तीनों लोकों की कोई स्वतन्त्र सता नहीं है। चितमात्र का ज्ञान ही तत्त्वज्ञान, तथता–ज्ञान अथवा तथागत की प्रज्ञा हैः–

"विकल्पमात्रं त्रिभवं बाह्यमर्थं न विद्यते।

चितमात्रावतारेण प्रज्ञा ताथागती मता।।"[5]

यह भी कहा गया है कि प्रवृति, निवृति, उत्पति एवं निरोध, यह सब चित का ही होता है। चित के अतिरिक्त ऐसा कोई दूसरा तत्त्व है ही नहीं जिसकी उत्पति आदि हो सकेः–

"चितं प्रवर्तते चितं चितमेव विमुच्यते।

चितं हि जायते नान्यच्चितमेव निरुध्यते।।"[6]

लंकावतार में हेतु–प्रत्ययों से जनित रूप में परिकल्पित समस्त संस्कृत धर्मों को चितमात्र उद्घोषित करते हुए यह कहा गया है कि ये संस्कृत धर्म आलम्बन एवं आलम्बनीयता से रहित हैं एवं चित के ही चित्र–विचित्र एवं नाना आकारों वाले परिणाम हैंः–

"आलम्बालम्ब्यविगतं यदा पश्यति संस्कृतं।

निमितं चितमात्रं हि चितमात्रं तदाम्यहम्।।"[7]

आत्मा एवं स्कन्ध आदि को व्यावहारिक सत्यमात्र बतलाते हुए यह कहा गया है कि लोक में साधारण जन आत्मा को नित्य स्वतन्त्र सता के रूप में स्थापित करते हैं। परन्तु आत्मा कभी भी द्रव्य–सत् न होकर प्रज्ञप्ति–सत् है। कुछ लोग आत्मा को पांच स्कन्धों का समुच्चय मानते हैं परन्तु स्कन्धों की भी द्रव्यसत् रूप में सिद्धि सम्भव नहीं है।

"प्रज्ञप्तिसत्यतो ह्यात्मा द्रव्यःस न हि विद्यते।

स्कन्धानां स्कन्धता तद्वत् प्रज्ञप्त्या न तु द्रव्यतः।।"[8]

चितमात्रता का निर्वचन करते हुए इस सूत्र में यह स्पष्ट कर दिया है कि समस्त मिथ्या दृष्टियों एवं विकल्पों का परित्याग, बाह्य पदार्थो का अनुपलम्भ (अप्राप्ति) एवं अजाति को ही चितमात्रता कहा गया हैः–

"व्यावृतिः सर्वदृष्टीनां कल्प्यकल्पनवर्जिता।

अनुपलम्भो ह्यजातिष्च चितमात्रं वदाम्यहं।।"[9]

पुनश्च इस जगत में न भाव है न अभाव है। चित को छोड़ कर अन्य कोई भी पदार्थ सत् नहीं हैः–

"न भावं चापि नाभावं भावाभावविवर्जितम्।

तथता चितविनिर्मुक्तं चितमात्रं वदाम्यहम्।।"[10]

चितमात्र ही परमार्थ है तथा यही तथता, शून्यता, निर्वाण एवं धर्मधातु जैसे दूसरे नामों से जाना जाता हैः–

"तथता शून्यताकोटि, निर्वाणं धर्मधातुकम।

कायं मनोमयं चित्रं, चितमात्रं वदाम्यहम्।।"[11]

यहीं पर विज्ञानवाद के इस मूलभूत मन्तव्य को स्पष्ट शब्दों द्वारा प्रकाशित किया गया है कि जो वस्तु–जगत् हमें दिखलाई देता है वह वास्तव में विद्यमान नहीं है। इस पर स्वाभाविक तौर पर यह शंका की जा सकती है कि जो कुछ दिखता है वह क्या है? लंकावतारसूत्र में इसी शंका का समाधान करते हुए यह कहा गया है कि यद्यपि चित का कोई भी आकार नहीं है फिर भी यही चित कभी देह के रूप में तो कभी उपभोग के रूप में विचित्र रूपों में दिखता है। अतः चित्रमात्र की ही वास्तविक सता है, बाह्य जगत तो इसी का परिणाम हैः–

"दृष्यं न विद्यते बाह्यं चितं चित्रं हि दृष्यते।

देहभोग प्रतिष्ठानं चितमात्रं वदाम्यहम्।।"[12]

लंकावतार के अनुसार लोकायत आदि चितमात्रता के सत्य को नहीं देखते। उन्हें यह चितमात्र द्विविध रूप से प्रतीयमान होता हैः–

1. ग्राह्य या विषय
2. ग्राहक या विषयी अथवा ज्ञाता।

परन्तु जो ज्ञानी है वे उस चितमात्र का दर्षन करते हैं जिसमें शाश्वतवाद एवं उच्छेदवाद के दोनों अन्तों का परिवर्जन हैः–

"चितमात्रं न पश्यन्ति, द्विधा चितं हि दृष्यते।

ग्राह्यग्राहकभावेन, शाष्वतोच्छेदवर्जितम्।।[13]

बाह्यार्थ की उपलब्धि के समय तीन पदार्थ उपस्थित रहते हैंः–

1. घट, पट आदि विषय जो चित द्वारा ग्राह्य हैं
2. उक्त वस्तु का ग्रहणकर्ता अथवा विषयी या ज्ञाता एवं
3. ग्रहण या ग्राह्य–ग्राहक के मध्य विद्यमान सम्बन्ध।

इस प्रकार ज्ञेय–ज्ञाता–ज्ञान की त्रितयी सर्वत्र विद्यमान रहती है। साधारण जन की क्लिष्ट मनोचेतना में यहां ज्ञेय वस्तु, ज्ञाता व्यक्ति एवं ज्ञान, इन तीन तत्त्वों का वास्तविक सद्भाव है। परन्तु लंकावतार में निर्दिष्ट विज्ञानवादी दृष्टि में ये तीनों ही एकाकार बुद्धि, ज्ञान या चित के परिणाममात्र हैं। भ्रान्त दृष्टि वाला व्यक्ति ही द्वैतरहित चितमात्र को अपने विकल्पों द्वारा भेदवान् बना देता है। परन्तु विज्ञानवाद तो विज्ञानाद्वैतवादी है। प्रतिमान में प्रतिभासित पदार्थों की बहुलता के कारण अद्वय चितमात्र बहुलता वाला प्रतीत होने लगता है, एक होने पर भी यह चितमात्र नाना प्रतिभासित होने लगता है। परन्तु यथार्थ में यह चितमात्र ही कर्ता–कर्म, ज्ञाता–ज्ञेय आदि सब स्वयं ही है। इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य वसुबन्धु द्वारा विवेचित विज्ञप्तिमात्रता की विज्ञानवादी अवधारणा का सुस्पष्ट प्रतिपादन आर्य–लंकावतार–सूत्र में है।

पाद–टिप्पणी

1. Outlines of Mahāyana Buddhism, Suzuki, D.T. PP. 64-63-
2. लंकावतार सूत्र, गाथा, 763.
3. *वही,* 2.135.
4. *वही,* पृ॰ 41, 42, 62, 63 आदि.
5. *वही,* 3.77, पृ॰ 99.
6. *वही,* 10.145, पृ॰ 134.
7. *वही,* 3.25, पृ॰ 74.
8. *वही,* 3.27, पृ॰ 74.
9. *वही,* 3.29, पृ॰ 74.
10. *वही,* 3.30.
11. *वही,* 3.31.
12. *वही,* 3.33.
13. *वही,* 3.65.